P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्रथम साहित्यिक विद्रोह करने वाला जन कवि– बांकीदास आशिया

मनोहर सिंह चारण
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
मोहनलाल सुखाडिया
विश्वविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

राजस्थान के डिंगल भाषा के कवियों में महान कवि कविराज बांकीदास का अप्रतिम स्थान है। उन्होंने अपने गीतों के माध्यम से जनजाग्रति का कार्य किया। महाकवि बांकीदास के इस प्रयास को भारतीय साहित्य में विदेशी दासता के विरुद्ध प्रथम साहित्यिक विद्रोह कहा जा सकता है। बांकीदास जोधपुर महाराजा मानसिंह के राजकवि और काव्यगुरु थे। राज्याश्रय में होते हुए भी इन्होनें सिर्फ यशोगान तक ही अपने काव्य को सीमित नहीं रखा, अपितु समय–समय पर पथ–प्रदर्शन का भी कार्य किया। तद्युगीन व्यवस्था और राजा–महाराजाओं को साहित्य के माध्यम से उनके किए गए कृत्यों को उजागर करते हुए फटकार पिलाई। ऐसी भी मान्यता है कि आपके स्पष्ट कहने की प्रवृत्ति के कारण आपको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कवि ने राजा महाराजाओं एवं आमजन में स्वातंत्र्य चेतना भरने एवं जाग्रत करने हेतु अपने दायित्व का निर्वाह क्रमशः अपने तीन गीतों के माध्यम से किया पहला गीत *गीत चेतावणी रौ* में कवि ने चेतावनी देते हुए सावधान होने का आह्वान किया है कि किस प्रकार व्यापार के लिये आये अंग्रेज यहाँ के शासक बन रहे हैं। दूसरे गीत *गीत भरतपुर रौ* में अंग्रेजों से लड़ने एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले राज्य एवं राजाओं का मनोबल बढ़ाने हुए उनकी प्रशंसा की है, साथ ही उन राज्यों से प्रेरणा लेने का आह्वान किया है। तीसरे गीत *गीत नींबावता रै महंत रौ* में राष्ट्र से विश्वासघात करने वालों के दोगले चरित्र को सबके सामने लाते हुए कठोर शब्दों में उनके इस देशद्रोही कृत्य की निन्दा की है।

मुख्य शब्द : बांकीदास, साहित्यिक विद्रोह, स्वातंत्र्य चेतना।

प्रस्तावना

''आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर'' कहकर साहित्य के माध्यम से राजा–महाराजाओं को एवं आम–जन को जाग्रत करने का कार्य करनेवाले राजस्थान के डिंगल भाषा के कवियों में महान कवि कविराज बांकीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने गीतों के माध्यम से जनजाग्रति का कार्य किया। महाकवि बांकीदास के इस प्रयास को भारतीय साहित्य में विदेशी दासता के विरुद्ध प्रथम साहित्यिक विद्रोह कहा जा सकता है, क्योंकि बांकीदास का समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से पूर्व का था।

महाकवि बांकीदास आशिया का जन्म सं. 1828 (सन् 1771) में जोधपुर राज्य के पचपद्रा परगने के भाड़ियावास गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम फतेहसिंह और दादा का नाम शक्तिदान था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की थी। काव्य रचना का कौशल उन्हें विरासत में मिला था। इनके पिता एवं दादा भी कवि थे। बांकीदास अपने जमाने के श्रेष्ठतम् डिंगल कवि माने जाते थे। इन्होनें सत्ताईस काव्य ग्रन्थों की रचना की थी, जिसमें से *बाकीदास की ख्यात* इनकी सर्वप्रमुख रचना मानी जाती है। ''साहित्यिक भाषाशैली के लिये *'डिंगल'* शब्द का प्रयोग बांकीदास ने *कुकवि बतीसी* (वि.स. 1871) में किया हैं– ''डीगलियाँ मिलियाँ करै, पिंगल तणो प्रकास।''[1]

बांकीदास जोधपुर महाराजा मानसिंह के राजकवि और काव्य गुरु थे। राज्याश्रय में होते हुए भी इन्होनें सिर्फ यशोगान तक ही अपने काव्य को सीमित नहीं रखा अपितु समय–समय पर पथ–प्रदर्शन का भी कार्य किया। तद्युगीन व्यवस्था और राजा–महाराजाओं को साहित्य के माध्यम से उनके किए गए कृत्यों को उजागर करते हुए फटकार पिलाई। ऐसी भी मान्यता है कि आपके स्पष्ट कहने की प्रवृत्ति के कारण आपको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसी प्रसंग में एक दोहा है–

बाँका थारी बाँक नै, काढ सक्यों नह कोय।
लाख पसाद तो एक दिया, देस निकाल दोय।।[2]

अर्थात् कवि ने कहीं भी समझौतावादी मानसिकता का परिचय नहीं दिया, अपितु विकट से विकट परिस्थितियों का भी सामना किया। उनकी स्पष्टवादिता कि कारण उन्हें दो बार जोधपुर राज्य से निष्कासित किया गया, लेकिन उन्होंने साहित्यिक गुलामी स्वीकार नहीं की और देशहित में जो आवश्यक है उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने निर्भीकता के साथ की।

भारतीय इतिहास में 1750 ई. के बाद राजनीतिक अव्यवस्था, कमजोर हो रही मुगल शासन व्यवस्था एवं मराठों व पिण्डारियों के अत्याचारों से स्थानीय रियासतें त्रस्त होने लगीं। इनसे बचने के लिए राजाओं ने अपने गौरव का विस्मृत कर अंग्रेजों से संधि करना शुरू कर दिया। यह सर्वविदित है कि अंग्रेजी गवर्नर लार्ड वेलेजली ने भारतीय उपमहाद्वीप में सहायक संधि (1799–1805) के माध्यम से अपने साम्राज्य का विस्तार प्रारम्भ किया था। 1803 ई. में राजस्थान की जोधपुर जयपुर जैसी बड़ी रियासतों ने सहायक संधि के तहत विदेशी दासता स्वीकार कर ली एवं अंग्रेजों के निर्देशानुसार शासन करना स्वीकार कर लिया। बिना संघर्ष किए सहज रूप से अधीनता स्वीकार करने की प्रवृत्ति स्वंतत्रता के अनन्य उपासक महाकवि बांकीदास को स्वीकार नहीं थी,

उन्होंने 1805 ई. में रचित अपने गीत *गीत चेतावणी रो* में चेतावनी देते हुए अपनी पीड़ा को व्यक्त किया। उनकी पीड़ा इन शब्दों में मुखर हुई–

आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर, आंहस लीधा खेंचि उरा।
धणियां मरै न दीधी धरती, धणिया ऊभा गई धरा।।[3]

अर्थात् अंग्रेज नाम का शैतान हमारे देश पर चढ़ आया है। देश रूपी शरीर की सारी चेतना को अपने खूनी अधरों से सोख लिया है। इसके पहले धरती के स्वामियों ने मरकर भी धरती को दुश्मन के हवाले नहीं किया था। आज यह स्थिति आ गई है कि धरती के स्वामी जिन्दा हैं और धरती उनके हाथ से चली गई। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने गुलामी की पीड़ा का बयान किया है।

फोजाँ देख न कीधी फोजाँ, दोयण किया न खला डला।
खवाँ–खांच चूडै खावंद रै, उणहिज चूडै गई ईला।।[4]

कवि की वेदना है कि दुश्मन की फौजों को सामने देखकर भी राजाओं ने अपनी फौजों को तैयार नहीं किया। दुश्मन बड़े मजे से उनका विनाश करते रहे, लेकिन वे दुश्मन का नाश नहीं कर सके। कवि व्यंग्य करते हुए कहता है कि अक्षत चुड़ले का सुहाग धारण किए, पति की मौजूदगी में ही पृथ्वी, सुहाग के समस्त प्रतिमानों सहित दूसरों के अधिकार में चली गई।

छत्र पतियाँ लागी नह छॉणत। गढपतियाँ धर परी गुम।
बल नह कियो बापड़ां बोतों, जोताँ–जोताँ गई जमी।।[5]

कवि कहता है कि धरती के छिन जाने परे न तो छत्रपतियों ने लज्जा का अनुभव किया न गढ़पतियों ने ही इसे अपकीर्ति समझा। प्राणों की कुशलता में ही उन्होंने अपने जीवन का सार समझा। बेचारे अभ्यागातों ने अवरोध तक प्रकट नहीं किया। वह देखते रहे और जमीन उनके हाथ से जाती रही।

दुय चत्रमास बाजियों दिखणी, भोम गई सों लिखत भवेस।
युगो नहीं चाकरी पकड़ी, दीधो नहीं मरेठाँ देस।।[6]

कवि की चिंता राजाओं के द्वारा प्रयास न करने को लेकर है इसलिए वह कहता है कि हार–जीत बल प्रयोग से ही सिद्ध नहीं होती, केवल प्रयास ही अनिवार्य है। दक्षिण क्षेत्र–वाले मराठों ने आठ महीने तक डटकर अंग्रेजों का मुकाबला किया, लेकिन इस पर भी वे अपने राज्य को नहीं बचा सके, यह उनके वश के परे की बात थी। मजबूर होकर उन्होंने दूसरी जगह चाकरी मंजूर कर ली, परन्तु अपने जिन्दा हाथ से धरती को अंग्रेजों के हवाले नहीं किया। यही उनका स्वाभिमान था।

बजियो भलो भरतपुर वालों, गाजै गजर धजर नभ गोम।
पहिलाँ सिर साहब रो पड़ियो, भड़ अभाँ नह दीधी भोम।।[7]

कवि बांकीदास लिखते है कि भरतपुर वालों ने खूब सामना किया। शरीर छोड़ दिया पर जीते जी किले को नहीं छोड़ा। तोपों का जवाब तोपों से देने वाले की कीर्ति आज दिन तक भी नभ में सर्वत्र गर्जन–तर्जन का रूप धारण किए हुए है। तोप के मुंह से निकली हुई आग आज की उनकी प्रतिष्ठा को प्रज्वलित कर रही है। उन वीरों के पांव जब तक जमीन पर टिके रहे, तब तक अपनी जमीन को दुश्मन के अधिकार में नहीं जाने दी।

महि जाताँ, चींताताँ महलाँ, ऐ दुय मरण तणाँ अवसाँण।
राखो रै किहिंक रजपूतों, मरद हिन्दू की मुसलमाण।।[8]

तद्युगीन परिस्थितियों के मध्य नजर महाकवि बांकीदास कहते हैं कि इस तरह मरने के सुअवसर मनुष्य को जिन्दगी में केवल दो ही बार मिलते हैं, एक तो उस वक्त जिन्दा रहना व्यर्थ हो जाता है जब देश की धरती कोई विदेशी हथियाना चाहता हो। दूसरे उस वक्त मरना जरूरी हो जाता है जब दुःख में पड़ी हुई किसी अबला की करुण चीत्कार सुनाई दे। देश और जननी की रक्षा करना किसी जाति–विशेष की बपौती नहीं है। यह तो मनुष्यता की पहचान है और पौरुष का प्रमाण है। कवि कहता है कि देश की रक्षा के लिए धर्म का कोई प्रतिबंध नहीं है। जन्म भूमि सबकी जन्मभूमि है और उसकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। आज देश पर भयंकर आपत्ति छाई हुई है। अरे तुम मनुष्य हो! कुछ तो वीरता दिखलाओ। देश की आज़ादी के लिए क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सब बराबर हैं।

पुर जोधाण उदैपुर, जैपुर, पह थाँरा खुरा परमांण।
आंकै गई आवसी आंकै, 'बाकै' आसल किया बखाँण।।[9]

कवि बड़े–बड़े साम्राज्यों के अधिपतियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि ओ जयपुर, उदयपुर और जोधपुर के महाराजाओ! तुमने तो अपने सम्पूर्ण वंश–गौरव को ही मिट्टी में मिला दिया। अपने आराम की खातिर सारे देश को दुःख में धकेल दिया। धिक्कार है तुम्हें। देश को गुलाम होना था और वह हो गया। जब आजाद होना होगा तब हो जायेगा। तुम्हारे किए अब कुछ नहीं होने वाला। कवि आशावान है इसलिए वह आशा प्रकट करते हुए कहता है कि पुनः मंगल घड़ी आएगी तथा राज–सत्ता उन्हें (भारतीयों को) पुनः मिल जाएगी। 15 अगस्त, 1947 को कवि की भविष्यवाणी सच साबित हुई और अन्ततः देश आजाद हुआ।

स्वतंत्र्य भाव से ओत–प्रोत कवि की वाणी ने विदेशी दास्ता से लोहा लेनेवालों का उत्साहवर्धन करते हुए मुक्त–कंठ उनके यश का गान किया है। जब राजस्थान की बड़ी–बड़ी रयासतें अंग्रेजों के सामने घुटने टेक रही थी तब भरतपुर के राजा रणजीतसिंह ने सहज गुलामी स्वीकार करने की अपेक्षा संघर्ष एवं युद्ध को उचित माना। महाकवि बांकीदास ने जोधपुर रियासत के राज–कवि होने के बाद भी *गीत भरतपुर रो'* के माध्यम से भरतपुर के शासक की स्वातंत्र्य चेतना को व्यक्त किया है –

उतन विलायत किलकता कांनपुर आविया,
ममोई लंक मदरास मेला।
यलम धुर वहण अंगरेज दारण यला।
भरतपुर ऊपरा हुआ भेला।।[10]

कवि कहते हैं कि वे अंग्रेज जिनकी जन्म–भूमि विलायत है, उन्होंने कलकत्ता और कानपुर में आकर अपना जाल फैलाना शुरू कर दिया है। बम्बई, मद्रास और ठेठ दक्षिण तक उनका जाल फैल गया है। हाथ में उनके भारी हुनर है, इल्म जिनका तेज है और सारी पृथ्वी पर कब्जा करने की नीयत से जो निरन्तर फैलाव करते जा रहे हैं। वे अंग्रेज उसी हुनर इल्म और नीयत के साथ आखिर भरतपुर पर भी आ धमके।

अलीयन सूर रो वंस कीधौ असत,
रेस टीपू विजै गंबर सडिया।
लाट जनराल जरनेल करनैल लख
जार रै किलै जमजाल जुडिया।।[11]

अंग्रेजों ने मुगल वंश के सूर्य को सर्वदा के लिए अस्त कर दिया है। टीपू जैसे वीर शासक को पराजित कर, उसके राज्य की सीमा को अपने विजय के नगाड़ों से उद्घोषित कर दिया है। उन अंग्रेजों ने अपने मेजर, जनरल, कर्नलों व असंख्य सेना की ताकत के साथ, भरतपुर के किले को चारों ओर से इस तरह घेर लिया जैसे साक्षात् यमराज और यमदूतों ने अपना जाल फैला रखा हो।

सैन रिजयर असंख्य पलटण तणे संग,
भड़ तिलंग बंग किलंग तणा भिलिया।
अभंग जंग भरत खंड पारका ऊसर ऊवै,
मारका वंजद्र रै दुरंग मिलिया।।[12]

कवि शत्रुओं की ताकत का उल्लेख करते हुए कहता है कि अंग्रेजों के पास सेनाओं, हजारों रेजिमेंटों और असंख्य पलटनों का समुद्र था। उसके साथ ही बंगाल, बिहार, तैलंग और उड़ीसा की सेनाओं के भारतीय सिपाही और आकर मिल गये। भंयकर से भंयकर लड़ाई में भी हार न खाने वाली इस भारत–भूमि से बहुत दूर निवास करने वाले इन नृशंस राक्षसों ने भरतपुर के अभेद्य और शक्तिशाली किले को सब तरफ से घेर लिया।

''सराबां बोतलां पीया छक–छक सड़क
किया निधड़क हिया, हखला कोप।
वीर रस भोपियां हलां विध–विध वधै
टोपियां दवादस तणा टोप।।[13]

कवि उल्लेख करते हुए कहता है कि शत्रुओं से मुकाबला करने के लिए भरतपुर के वीरों ने युद्ध की सूचना से उल्लसित हो, छककर शराब पी। मदोन्मत्त मतवाले होकर उन्होंने निर्भयता के साथ दुश्मन का आह्वान किया। फौज की हरावल करने वाले सिपाही क्रोध में उन्मत्त हो उठे। वीर–रस के उन साक्षात् पुतलों ने बढ़–बढ़ कर उत्साह के साथ वार करने शुरू कर दिये। 'बारहवीं टोपी' के नाम से विख्यात इन टोपधारी फिरंगी सिपाहियों की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने की मानो प्रतियोगिता सी हो गई।

''पीठ बड़बड़ात कूरम, छटा प्रलै री
मही खडखड़ात हैजम मचोला।
मुनि हदहड़ात घडड़ात तोपां महत।
गयण गड़्ड़ात पडझार गोला।[14]

कवि युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए कहता है कि इस प्रलयंकारी युद्ध का रूप बड़ा विकट है, जिसके वेग से कच्छप की पीठ चरमराने लगी है। विचित्र है इस घमासान युद्ध की छटा जिसके कारण पृथ्वी तक विकम्पित होने लगी है। अनोखी है इस युद्ध की छटा कि इधर एक के बाद एक बड़ी–बड़ी तोपों की भारी आवाज धड़धडा रही है और उधर इस युद्ध की विकटता को देख कर नारदमुनि भी हड़हड़ात की ध्वनि करते हुये अट्टहास करने लगे हैं। आश्चर्यजनक है इस युद्ध का दृश्य। गोलों के भीषण प्रहारों और उनकी भयावनी ध्वनि से समूचा आकाश गड़गड़ाहट की ध्वनि से भर उठा है।

अरक दुत सोम सम, नमै लोमणा असम
धुआं तम तोम लग धुरा धुरा।
तठै सूर लडैत थरै धण तंदूरा
हरख सूरा निरख रंभ हूरां।।[15]

फौजों के पारस्परिक संधर्ष, तोप, बारूद और गोलों के धुएँ से आकाश में सर्वत्र इस सीमा तक गर्द छा गई है कि सूर्य की प्रखर दीप्ति भी धूमिल होकर चन्द्रमा के समान शीतल हो गई है। आँखों से देखना असम्भव–सा हो गया है, आग और बारूद के असह्य ताप से आँखों की पलकें एक ही जगह स्थिर हो झुक गई हैं। धुएँ ने अंधकार का विकट रूप धारण कर लिया है और वह आकाश में दूर तक फैल गया है। ऐसी परिस्थितियों में भी युद्ध के बाजों की आवाज पर योद्धा हर्षोन्मत्त हो, लड़ने के लिये बेताब हो रहे हैं। वीरों के इस असीम उत्साह और साहस को स्वर्ग की अप्सराएँ चकित हो निरख रही हैं।

''धड़ा सिर जोम, ताजै धड़ा धमाधम,
कांगुरा तरफ बाजै कुहाड़ां।
किलो गिरधरण ओलै रमण वंधकड़ा
विरोलै चोवड़ा फिरंग वाला।[16]

कवि कह रहा है कि युद्ध से उत्प्रेरित वीरों के शरीर में जोश और उत्साह समा नहीं रहा है। भालों के तीखे नोकों से उनका शरीर सर्वत्र बिंध गया है, फिर भी इन उन्मत्त बावलों को अपने शरीर की सुध–बुध तक नहीं। किले के हर कँगूरे पर कुल्हाड़ों की निरन्तर आवाज सुनाई दे रही है। फिरंगियों ने अपनी चौगुनी सेना की मदद से, चारों तरफ किले को विध्वंस करने का प्रयास किया है। पर जिस किले का संरक्षण गिरधर के हाथ है और जिसकी फाटक पर रणजीत सिंह जैसा वीर योद्धा

डटकर दुश्मन का मुकाबला कर रहा है, उस किले पर अंग्रेजों का क्या जोर चले ?

''दिया सूजा तणै पेड़ तोपा दिसा
सफीला तणा नह लिया सरणा।
वीजला रीठ पावै सझा विलावै
विजा करपुर करपुरा वरणा।।[17]

कवि भरतपुर के शासक की प्रशंसा करते हुए कहता है कि किले की रक्षा के खातिर सूरजमल के पुत्र रणजीतसिंह ने प्राणों की रंचमात्र भी परवाह न करके, आग उगलती हुई तोंपों के मुँह की तरफ अपने कदम बढ़ाये। कायरों की तरह किले की चहारदीवारी के भीतर उसने अपने को छिपाने की चेष्टा नहीं की। तलवारों की झड़ी और भालों की तीक्ष्ण नोकों के बीच वह योद्धा बड़ी कुशलता के साथ अपने हाथ दिखाने लगा। जिसके प्रहारों को झेलने में असमर्थ, कपूर के समान श्वेत वर्ण वाले फिरंगी कपूर के समान गायब होने लगे।

''अणी जटवाड़ वीतरांतणी आकलै।
विवध तीरा तणी मची वरखा।
हसम अंगरेज री आढ वाटा हुई।
पुर पांटा हुई रूधर परखा।।[18]

कवि आगे वर्णन करते हुए लिखता है कि जाटों की सेना का प्रत्येक सिपाही अपने देश की खातिर वीरता से लड़ रहा है। तीरों की तो जैसे बरसात ही बरसने लगी। देखते–देखते फिरंगियों की सारी सेना तितर–बितर हो गई। किले की खाई खून से भर उठी और धरती लाशों से पट गई।

''अरांबां तणो असबाब अपणावियो
भट किलकता तणो भागौ।
आड रोपी वज्रंद झीक वागो असंभ।
लीक टोप परक पंथ लागौ।[19]

अंग्रेजों की दुर्गति का वर्णन कवि इस प्रकार कर रहा है, युद्ध की समस्त साज–सामग्री को पीछे छोड़कर कलकते का वीर (अंग्रेज) भाग छूटा। अतुल युद्ध–सामग्री भरतपुर वालों के हाथ लगी। वज्र के समान दृढ़ भरतपुर के राजा ने ऐसा अतुलनीय युद्ध किया कि फिरंगियों का सेनापति जरनल लेक निर्लज्ज की तरह युद्ध–स्थल से भाग गया।

''अमावड वनां में हुई लोभा अनन्त
चढै घोंडा वात दिंगत चाली।
साथरा दिंराण हजारा साहिबां
खुरसिया हजारां हुई खाली।।[20]

कवि युद्ध के बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखता है कि चारों ओर का जंगल लाशों से इस तरह पट गया कि मानो यह लाशों का ही वन हो। भरतपुर के वीरों की यह अमिट कहानी हवा के साथ सर्वत्र फैल गई। वीरों ने अंग्रेजों की लाशों को जमीन पर सर्वत्र पथरा दिया। हजारों की तादाद में अंग्रेज अधिकारी मरे और हजारों की तादाद में कुर्सियां (पद) खाली हो गई।

''अण खरब कलह तर कहै दुज अकेठा
गरब वां किताबां तणा गलिया।
यथा बलहीन लसकर फिरंगथान रा
चीण इंनान रा इलम चलियां।।[21]

कवि का कथन है कि भरतपुर के वीरों ने साहस के साथ युद्ध कर भारत भूमि के गौरव को अक्षुण्ण रखा है। आज दिन तक हजारों पंडित–ब्राह्मणों ने अपनी पोथियों में अगणित युद्धों का जो प्रशंसात्मक वर्णन किया है उन पोथी–पानड़ों का सारा गर्व इस युद्ध के सामने विलुप्त हो गया। इसके साथ समाप्त हो गई अंग्रेजों की सारी ताकत भी। चीन और यूनान से दीक्षित उनके सारे कवायदी इल्म भी व्यर्थ हो गये।

मेर मरजाद रणजीत आखाडमल
खेर दीधा डसण जबर खेटैं।
पुखत गुरगम मिली सेन पण पांकियों।
भरतपुर फेररनह उसर भेटैं।।[22]

कवि बांकीदास अपनी वाणी की ओजस्वीता को मुखरित करते हुए कहता है, यह रणजीत सिंह के युद्ध का कौशल था कि जिसके कारण उसकी और उसके देश की मर्यादा सुमेरू पर्वत के समान सर्वदा अचल रही। दुश्मनों के तो जैसे उसने सारे दाँत ही तोड़ दिये। हमेशा जीत का दंभ भरने वाले अंग्रेजों की सेना का प्रण टूट गया। एक ऐसा पुख्ता सबक उन्हें हासिल हुआ जो आसानी से भुलाया नहीं जा सकेगा। ये नृशंस राक्षस भविष्य में कभी भी भरतपुर से सामना करने का दुस्साहस नहीं करेंगे।

महाकवि बांकीदास ने विदेशी ताकतों एवं अंग्रेजों से लोहा लेने वाले राज्यों एवं उनके शासकों की साहित्यिक प्रशंसा के साथ तद्युगीन सर्वशक्तिमान अंग्रेजी सत्ता को नृशंस राक्षस जैसे शब्दों से सम्बोधित किया। महाकवि ने राष्ट्र एवं स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण मानते हुए हर तरह के कष्टों को सहन करना स्वीकार किया, लेकिन साहित्यिक गुलामी को स्वीकार नहीं किया था। भौतिक सुख सुविधाओं से वशीभूत होकर अंग्रेजों का गुणगान करना उचित नहीं समझा।

कवि ने अंग्रेजों से लड़ने वाले भरतपुर शासक की प्रशंसा की तो वहीं विश्वासघात कर अंग्रेजों के साथ मिलकर राष्ट्रद्रोह करने वालों को अपने साहित्य के माध्यम से खरा–खरा कहते हुये उन्हें आईना दिखाने का प्रयास किया।

कविराज बांकीदास ने *गीत नीबांवतां रै महंत रा* में साधु–वेश में विश्वासघात करने वाले महंत के चरित्र को सबके सामने लाने का प्रयास दिया है। जो इस प्रकार है–

हुवौ कपाटा रो खोल बोहतै फिरंगी थाटां रो हलो,
मंत्र खोटा घांटा रो उपायौ पाप भाग।
माया भड़ा फांटा रो हरीफ हाथे दीनों भेद,
ऊभा टीका वाला कीनों जाटा रो अभाग।।[23]

कवि कहते हैं कि अकस्मात किले के ये दरवाजे कैसे खुल गये ? फिरंगियों की सेना धड़ाधड़ किले के भीतर घुसती ही चली आ रही है। किसी हृदयहीन नीच व्यक्ति ने यह उपाय सुझाया मालूम होता है। अपने भाई–बन्धुओं से फूट कर दुश्मनों को उसने घर का सारा भेद दे दिया है। लम्बे टीकों वाले इन पांखडी साधुओं ने यह दुष्कर्म किया है। इन धूर्त महन्तों के ही कारण जाटों को इस अप्रत्याशित दुर्भाग्य का सामन्र करना पड़ा।

माल खायो ज्यांरों त्योंरों रन्ती हीयै नायो मोह,

कुबदी सूं छायो भायो नहीं रमांकत।
वेसासधात सूं काम कमायों बुराई वालों
माजनों गमायो नीबावतां रै महंत।।[24]

कवि कहते है कि जिसका अन्न–पानी खाया, उसके लिये भी इन कृतघ्न निर्मोही साधुओं ने रंचमात्र की ख्याल नहीं किया। इनका हृदय कपट और दुष्टता से भरा हुआ है। प्रपंचियों ने अपने स्वामी का तनिक भी ध्यान नहीं रखा। देश के साथ विश्वासघात करके इन अधर्मियों ने दुश्मन से अपना काम निकालने में ही जीवन का श्रेय समझा। नींबावतौ के इन महन्तों ने अपनी सारी मान–मर्यादा और प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया।

भूप बियां च्यारू संप्रदाय रो भरोसो भागों,
लागो कालों सलेमाबाद नूं गाडा लाख।
नांगा मिलै साहब सूं भिलायों भरत्थानेर।
राज कंढी–बंधों रो मिलायो धूड़ राख।।[25]

कवि कहता है कि एक गन्दी मछली जिस प्रकार सारे तालाब को गन्दा कर देती है, उसी प्रकार इस एक सम्प्रदाय की वजह से दूसरे चारों सम्प्रदायों ने भी अपना विश्वास खो दिया। इन नीबांवत महन्तों ने अपनी काली करतूतों से, अपने पूज्य स्थान सलेमाबाद पर भी लाखों मन कालिख पोता दी। इन लफंगों ने गोरों से मिलकर भरतपुर के किले पर विदेशियों का कब्जा करवा दिया। अपने कण्ठीबंध राजा और उसके राज्य को धूल में मिलवा दिया।

आगरा सूं लूट सुजै अेकठो कियो सो आणै
खंजानों अटूट ताला लूटीजियों खास।
कपणी सू वेध मोटै जांगियां पालटै किलों,
वैरागियां हूंता हुवौ जांरा रो विणास।।[26]

कवि कहता है कि वीर सूरजमल ने आगरे की लूट से जिस खजाने को समृद्ध बनाया था। अटूट ताले ओर पहरेदारों से सुरक्षित जिस बादशाही खजाने को लूटकर उसने यश और धन दोनों का अर्जन किया था–भरतपुर के उसी खजाने को इन दुष्ट महन्तों ने दुश्मनों के हाथों लुटवा दिया। गोरों की इस वणिक–कम्पनी से युद्ध करते समय, विश्वासघातियों के विश्वासघात के कारण किले का भाग्य की पलट गया। इन तथाकथित वैरागियों के कारण जाटों का सर्वनाश हो गया।

कवि ने राजा महाराजाओं एवं आमजन में स्वातंत्र्य चेतना भरने एवं जाग्रत करने हेतु अपने दायित्व का निर्वाह क्रमशः अपने तीन गीतों के माध्यम से किया पहला गीत *गीत चेतावणी रौ* में कवि ने चेतावनी देते हुए सावधान होने का आह्वान किया है कि किस प्रकार व्यापार के लिये आए अंग्रेज यहाँ के शासक बन रहे हैं। दूसरे गीत *गीत भरतपुर रौ* में अंग्रेजों से लड़ने एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले राज्य एवं राजाओं का मनोबल बढ़ाने हुए उनकी प्रशंसा की है, साथ ही उन राज्यों से प्रेरणा लेने का आह्वान किया है। तीसरे गीत *गीत नींबावता रै महंत रौ* में राष्ट्र से विश्वासघात करने वालों के दोगले चरित्र को सबके सामने लाते हुए कठोर शब्दों में उनके इस देशद्रोही कृत्य की निन्दा की है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजस्थान के चारण कवियों के योगदान को रेखांकित किया गया है। आजादी की लड़ाई में जहाँ स्वतंत्रता सेनानियों ने तलवारों एवं तोपों से लड़ाई लड़ी, वही कवियों एवं साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से विदेशी ताकतों को ललकारा। भारतीय इतिहास में साहित्य के माध्यम से सर्वप्रथम विद्रोह करने वाले डिंगल भाषा के जन–कवि बांकिदास आशिया के योगदान को समाज के सामने लाना भी इस पत्र का उद्देश्य है। कवि बांकीदास आशिया ने चारण जाति में जन्म लिया था। चारण जाति ने कलम एवं तलवार दोनो के माध्यम से आजादी की लडाई में अपना सर्वस्व अर्पण किया। उनके योगदान से भी आधुनिक पीढी को अवगत करवाना। जोधपुर राज्य के राज–कवि बांकीदास के स्वतंत्र्य प्रेरक साहित्य एवं उनकी रचनाओं से साहित्य जगत एवं समाज को अवगत करवाना इत्यादि इस शोध–पत्र का उद्देश्य है।

निष्कर्ष

भारतीय इतिहास में महाकवि बांकीदास ने विदेशी दासता के विरुद्व सर्वप्रथम साहित्य विद्रोह कर अपने काव्यधर्म का निर्वाह किया और जो परम्परा स्थापित की वह अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने तक अनवरत चलती रही। भारतेन्दु युग से लेकर प्रगतिवाद तक इस परंपरा को देख सकते हैं । कवियों की ओजस्वी वाणी ने ही देश के नागरिकों को जाग्रत कर अंग्रेजों से लोहा लेने को प्रेरित किया जिसका परिणाम है कि हम आज आजादी की सांस ले रहे हैं और विकास के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। कवि बांकीदास का राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत साहित्यिक अवदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *मोतीलाल मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. 163*
2- *www.charans.org/ban*
3. *नृसिंह राजपुरोहित, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थानी कवियों रौ योगदान, राजस्थानी साहित्यिक संस्थान, जोधपुर पृ. 65*
4. *वही पृ. 65*
5. *वही पृ. 65*
6. *वही पृ. 65*
7. *वही पृ. 65*
8. *वही पृ. 65*
9. *वही पृ. 66*
10. *नारायण सिंह भाटी (सं.), गोरा हरजा, स्वतंत्रता आन्दोलन राजस्थानी प्रेरक रचनाएँ, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर पृ. 62*
11. *वही पृ. 62*
12. *वही पृ. 62*
13. *वही पृ. 62*
14. *वही पृ. 62*
15. *वही पृ. 62*
16. *वही पृ. 63*
17. *वही पृ. 63*
18. *वही पृ. 63*
19. *वही पृ. 64*
20. *वही पृ. 64*
21. *वही पृ. 64*
22. *वही पृ. 64*
23. *चन्दुमौलि सिंह, प्रियंका पारीक (सं.) बांकीदास ग्रंथावली, इंडियन सोसायटी फॉर एजुकेशनल इनोवेशन, जयपुर, पृ. 68*
24. *वही पृ. 68*
25. *वही पृ. 68*
26. *वही पृ. 68*